



आचार्य श्रीराम शर्मा के शैक्षिक विचारों की वर्तमान उपादेयता

सन्तोष कुमार पाण्डेय

असि0प्रो0 एम0एड0 विभाग, संत तुलसीदास पी0जी0 कालेज, कादीपुर-सुलतानपुर (उ0प्र0) भारत

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् 1987 (20 सितम्बर 1911) को स्थूल शरीर से अँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा, जो जलेसर मार्ग पर आगरा से 16 मील की दूरी पर स्थित है, में जन्में श्रीराम शर्मा आचार्य जी का साधना के प्रति झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त में उनकी दृढ़ आस्था थी। वे जाति-पाति का कोई भेद नहीं करते थे।

आज समाज में हत्या, लूट-पाट, चोर-बाजारी, धोखाधड़ी, अपहरण तथा आतंकवादी घटनाएँ नित्य घटती ही रहती हैं। पूरा विश्व पूँजीवादी और वैश्वीकरण से प्रबलता से प्रभावी है। पूरे भारत और विश्व समाज में जीवन मूल्यों का बड़ी तेजी से ह्रास हो रहा है। अनाचार और भ्रष्टाचार चरम सीमा पर पहुँच गया है। तप-त्याग और तितिक्षा की बातें खोखली लगने लगी है। व्यक्तिवादी आपाधापी बढ़ रही है। उधर विषमता बराबर पैर फैला रही है। पुरानी मान्यतायें और आदर्श ध्वस्त हो रहे हैं। देश के लिए बलिदान होने वाले क्रांतिकारियों, समाज-सेवियों, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को न केवल महत्त्वहीन माना जा रहा है, अपितु सिरफिरा, सनकी मानकर उनकी भर्त्सना की जा रही है। समाजिक स्थिति चिन्ताजनक और भयावह है। हम कागज पर सामाजिक न्याय का ढिंढोरा पीट रहे हैं, जबकि वास्तविकता कुछ और है। सारा विश्व असुरता-आतंक की बाँहों में है। वर्ग से वर्ग, जाति से जाति, धर्म से धर्म और भाषा से भाषायें आपस में झगड़ रही हैं। सदाचार सत्याचरण, सहकार, ऐक्य, नैतिकता और सुख-शान्ति की धुरी सभी दुर्भाव-विकार-हीनता से ग्रस्त हैं। आज भारत का औसत नागरिक गरीबी, अशिक्षा की दुहरीमार से बुरी तरह ग्रस्त है। दोनों ही उसे स्वतंत्रता के पूर्व से ही विरासत में मिली है- साथ ही मिला है अकर्मण्यता का अनुदान। इन तीनों के समन्वय ने ऐसी स्थिति विनिर्मित कर दी है, जिसे असहनीय ही कहा जा सकता है। उदरपूर्णा किसी तरह हो भी जाता है, परन्तु पारिवारिक वातावरण विग्रह-कलह, गरीबी के मारे नरक जैसा बन गया है।

आचार्य जी के विचारों की उपयोगिता :-भरमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने भगवद्-प्राप्ति के सभी मार्ग हमारे समक्ष खोलकर रख दिये। उन्होंने विभिन्न प्रकार की साधना-प्रणालियों का मूल गायत्री बताकर सभी को उसके मर्म को जीवन में उतारने को कहा, वह चाहे किसी भी जाति का या धर्म का क्यों न हो। सभी पहुँचते विभिन्न मार्गों से एक ही केन्द्रबिन्दु की ओर हैं, यही निष्कर्ष पूज्यवर के जीवन-दर्शन के अमृत-मंथन से निकलता है। कभी वैदिक युग में ऋषियों के मुख से 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' निकला था, किन्तु द्वापर में 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' की घोषणा के बाद इस उदार महावाक्य को बीसवीं शताब्दी में जीने पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी को आना पड़ा। पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के जीवन उनके सम्पूर्ण कार्य-कलापों तथा गतिविधियों का विहंगमालोकन करने पर ज्ञात होता है कि उनकी समस्त योजनाओं का केन्द्र शिक्षा है। वे शिक्षा को मात्र औपचारिक विद्यालयी शिक्षा तक सीमित न मानकर उसे आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं तथा उनकी महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति का संस्कारवान्, सच्चरित्र एवं सुसभ्य बनाने की प्रक्रिया का ही नाम शिक्षा है। इसके लिए विविध विषयों के भारी-भरकम पाठ्यक्रमों की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि सुसंस्कृत व्यवहार शिक्षण की है। प्राचीन गुरुकुलों में व्यवहार-शिक्षण पर ही अधिक बल दिया जाता था।

(1) वैदिक दृष्टिकोण का पुनरुत्थान : आचार्य जी ने केवल वेदों के भाष्यकार ही नहीं, बल्कि स्वयं भी युगद्रष्टा ऋषि हैं। उनका दर्शन वेदों की ओर प्रत्यागमन है। इतने लम्बे संघर्षपूर्ण इतिहास के बाद भारतीय दर्शन उनके विचारों में पुनः अपनी आत्मा को पा लेता है, लेकिन लम्बे विकास का श्रम बेकार नहीं गया। प्रकृति और विचार दोनों विरोधों में होकर आगे बढ़ते हैं। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत एकांगी भले हों, पर परम् सद्वस्तु के किसी न किसी पहलू विशेष को प्रकाशित करते हैं। उनका एकमात्र दोष, पूर्ण के स्थान पर अंश को रखना है। आचार्य जी ने उन सभी को माना है, लेकिन उनकी सीमाओं को भी निर्देशित किया है। उनके व्यापक बोध में 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' वेदों में वर्णित एकं सत्-बहुवादों के सारभूत तत्त्व के साथ अपनी पूर्णता व समग्रता में अभिव्यक्ति होता है।

उन्होंने न केवल वैदिक विचार शैली का पुनरुत्थान किया, बल्कि गायत्री और यज्ञ का प्रसार-विस्तार करके वैदिक जीवन-शैली को पुनर्जीवित किया है। लाखों की संख्या में विश्वभर में फैले गायत्री परिवार के सदस्यों के रहन-सहन व आचार-विचार में वैदिक जीवन-शैली की झलक अनुभव ही जाती है। वैदिक काल की ही भाँति यज्ञ-याग



के कर्मकाण्ड एवं वैदिक मन्त्रों में निष्णात् ब्रह्मवादिनी महिलार्ये गायत्री परिवार के यज्ञायोजनों एवं विविध कार्यक्रमों को संचालित करती देखी जा सकती हैं। आचार्य जी के प्रयासों का मूर्तरूप गायत्री परिवार के चिन्तन व जीवन को देखकर ऐसा अनुभव होता है, जैसे वैदिक चिन्तन व जीवन का धरा पर पुनः अवतरण हो गया हो।

(2) धर्म-दर्शन एवं विज्ञान में समन्वय : धर्म-दर्शन व विज्ञान में अन्तर्विरोध ने मनुष्य-जाति को असमंजस की स्थिति में डाल रखा है। धर्म में उसकी भावना गूँथी है, दर्शन ने उसके लिए विचार-जगत् के नये आयाम खोले हैं। विज्ञान ने उसके जीवन के सुख जुटाए हैं। ऐसे में वह किसे छोड़े, किसे स्वीकार करे? इन तीनों का अन्तर्विरोध बहुत स्पष्ट है। श्रद्धामूलक धर्म को दर्शन की तार्किकता; विज्ञान की भौतिकता एकदम पसन्द नहीं। इसी तरह दर्शन वैचारिक उड़ाने विज्ञान की प्रयोगिकता से मेल नहीं खातीं। पारस्परिक अन्तर्विरोध के इस स्वरूप ने मनुष्य को जितना कुछ दिया है, उससे कहीं ज्यादा छीना है। विज्ञान ने मनुष्य की आस्था छीनी और दर्शन ने भावना और धर्म ने तो भावुकता का अन्ध शोषण करके उसे कुरीतियों, मूढताओं के अन्धरे में ढकेल दिया।

(3) पर्यावरण-शिक्षा की महत्ता पर बल : सम्पूर्ण सृष्टि-चक्र संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। सन्तुलन की व्यवस्था प्रकृति प्रदत्त है। दिन, रात, महीनों तथा ऋतुओं में परिवर्तन चक्र की विद्यमानता मनुष्य द्वारा निस्सृत कार्बन डाई आक्साइड एवं वृक्ष वनस्पतियों द्वारा वर्षा करके समुद्र की आपूर्ति आदि प्रत्यक्षतः प्रकृति के सन्तुलन की व्याख्या करते हैं। सन्तुलन के बिगड़ जाने से प्रकृति के कार्य-व्यापार बाधित होते हैं तथा वह क्षुब्ध हो जाती है। आज की परिस्थितियों ने मनुष्य की प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़कर रख दिया है। फलस्वरूप प्रकृति का क्रुद्ध होना अनिवार्य ही है। अनियंत्रित जनसंख्या-वृद्धि तथा वनों के तीव्रगामी हास के कारण पर्यावरण की समस्यायें पैदा हो रही हैं। आज की शिक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती प्राकृतिक असन्तुलन और पर्यावरण-प्रदूषण की है। शिक्षा को इस चुनौती को स्वीकार करते हुए इसका समुचित समाधान प्रस्तुत करने के लिए तैयार होना होगा। अन्यथा सम्पूर्ण प्राणि जगत् के सामने संकट उत्पन्न हो जाएगा।

(4) मानव-शरीर की व्याख्या-महत्ता : मनुष्य वास्तव में मात्र वैसा है नहीं, जैसा कि ऊपर से दिखाई देता है। हम उसका स्थूल शरीर देखते हैं। इसके अतिरिक्त उसके दो शरीर- (i) सूक्ष्म शरीर, तथा, (ii) कारण शरीर और हैं। सूक्ष्म शरीर उसकी विचारणाओं तथा संकल्पों आदि का केन्द्र है तथा कारण शरीर भावनाओं का। स्थूल शरीर का सम्बन्ध भौतिक जगत् से है तथा कारण शरीर का अध्यात्म जगत् से। सूक्ष्म शरीर इन दोनों ही क्षेत्रों की उन्नति के लिए सहायक और उभयनिष्ठ है। आचार्य जी ने इन तीनों का सम्बन्ध तीन शक्तियों से जोड़ा है-

1. स्थूल शरीर का निष्ठा से,
2. सूक्ष्म शरीर का प्रज्ञा से, तथा
3. कारण शरीर का श्रद्धा से।

मनुष्य के समग्र विकास के लिए इन तीनों शक्तियों की आवश्यकता है तथा इनमें किसी एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। निष्ठा का सम्बन्ध कर्म से है। हमें कर्मनिष्ठ होना चाहिए। कर्मनिष्ठ होने का तात्पर्य निष्काम कर्मयोगी होने से है। प्रज्ञा का सम्बन्ध हमारे विवेक युक्त विचार से है। यह ज्ञान योग है। सदास्यता के प्रति समादर युक्त लगाव ही श्रद्धा है। इसका सम्बन्ध भक्तियोग है।

इस प्रकार निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा की ही व्याख्या क्रमशः कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के रूप में की गयी है। ये तीनों ही हमारे सर्वांगीण अभ्युत्थान के लिए अनिवार्य हैं। ये ही त्रिपदा गायत्री के तीन पद हैं तथा यही गायत्री-दर्शन की मूल भावना है, जिस पर आचार्य जी का शिक्षा-दर्शन आधारित है।

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य शिक्षा के द्वारा हमारी इन तीनों प्रसुप्त शक्तियों को जगाना चाहते हैं। अविचारपूर्वक किया गया कर्म व्यर्थ है और वह ज्ञान भी व्यर्थ है, जिसे व्यवहार में उतारा न जा सके। वही ज्ञान सार्थक है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारे व्यवहार अथवा कर्मों में होती है। वे भावनाएँ भी व्यर्थ हैं जो हमें अपने लक्ष्य की ओर चलने के लिए विवश न कर दें। शिक्षा अपने लक्ष्य को तभी प्राप्त कर सकेगी, जब वह मनुष्य में अन्तर्निहित इन तीनों शक्तियों को स्फुरित करने में सफल होगी।

उपर्युक्त सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोग के लिए आचार्य जी साधना, स्वाध्याय संयम तथा सेवा के चार सूत्र बताते हैं। साधना से तात्पर्य एक सधी हुई जीवन-विधि को अपनाकर निश्चित दिशा में आगे बढ़ने से है। अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मनुष्य को अपने आपको साधना होता है। आचार्य जी का जीवन-दर्शन आस्तिकता पर आधृत होने के कारण साधना के अन्तर्गत देवोपासना भी समाविष्ट है। बिना साधना के उपासना फलवती नहीं हो सकती, यह एक सर्वमान्य तथ्य है। अपनी जीवन-दृष्टि, लक्ष्य को स्पष्ट रखने के लिए यह आवश्यक है। यह उपासना का पूरक भी है तथा किसी भी



प्रकार उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है। ये दोनों सूत्र (साधना और स्वाध्याय) क्रमशः निष्ठा और प्रज्ञा से सम्बद्ध हैं। श्रद्धा द्वारा उत्पन्न भक्ति हमें सेवा कार्यों के लिए विवश कर देती है। वस्तुतः, भक्ति का अर्थ ही सेवा होता है, क्योंकि इसकी निष्पत्ति 'भज् सेवायां' धातु से होती है। समाज को भगवान् का स्वरूप समझकर उसकी सेवा करना ही सच्ची भक्ति है। इसके लिए हमें त्याग करना होगा। अपनी आवश्यकताओं पर अंकुश लगाना होगा। इसी को संयम कहते हैं। संयम के बिना सेवा नहीं हो सकती। इसीलिए सेवा के साथ ही संयम का सूत्र भी आवश्यक माना गया है।

उपर्युक्त चार सूत्र व्यवहार में ला सकें, इसके लिए आचार्य जी ने अनेक माध्यमों से मानव-मन को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की है:-

1. धर्मतन्त्र के माध्यम से : उपासना विधियों, गायत्री यज्ञों, दीप यज्ञों, संस्कारों तथा विधि पर्व-त्यौहारों के सम्पादन के माध्यम से आचार्य जी ने मानव-मन का परिष्कार करने का सफल प्रयास किया है।
2. पुराण-कथाओं (सत्यनारायण व्रत-कथा एवं प्रज्ञा-पुराण), प्रवचनों तथा स्वाध्याय के माध्यम से : पुराण कथाओं (सत्यनारायण व्रत-कथा एवं प्रज्ञा-पुराण), प्रवचनों तथा स्वाध्याय के माध्यम से सिद्धान्तों को अन्तःकरण की गहराई में बैठाने का प्रयास आचार्य जी ने किया है। इसके लिए उन्होंने बहुविध साहित्य का सृजन किया है। (देखें- अध्याय-चतुर्थ, पृ 17-18)
3. स्लाइड प्रोजेक्टरों के माध्यम से भी विविध प्रकार के लोक-शिक्षण किये गये हैं।
4. उपर्युक्त सिद्धान्तों के व्यावहारिक शिक्षण के निमित्त शांतिकुंज, हरिद्वार में अनेक प्रकार के साधना-सूत्रों का आयोजन होता रहता है, जिनमें साधकों को एक निश्चित दैनिकी के अन्तर्गत गुजरना पड़ता है। आचार्य जी के शिक्षा-सिद्धान्तों का प्रयोग औपचारिक विद्यालयों में दुष्कर दिखाई देता है। वे स्वयं भी वर्तमान शिक्षा-नीति के रहते हुए इसे असंभव बताते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है, भारत का धर्मनिरपेक्ष नीति पर आधारित राज्य या गणराज्य होना तथा इसकी शिक्षा-नीति में भी इसे वर्चस्व प्रदान करना। अतएव, आचार्य जी प्रज्ञा-संस्थानों को विद्यालय का रूप प्रदान किये जाने की योजना सामने रखते हैं। उनकी राय में विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भी दो घण्टे के अतिरिक्त समय में प्रज्ञा-संस्थानों में शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए और विद्यालय के अतिरिक्त उन्हें जीवन-निर्माण सम्बन्धी बातें भी बतायी जानी चाहिए। प्रज्ञा-संस्थानों के दिव्य वातावरण में ये बालक निश्चय ही सुसंस्कारवान् बनेंगे, ऐसा उनका विश्वास है।

आचार्य जी शिक्षा को बालक-बालिकाओं तक ही सीमित नहीं करते। उनके अनुसार शिक्षा की आवश्यकता स्त्री, पुरुष, बाल-वृद्ध सभी को है। अतएव, प्रज्ञा-संस्थानों में प्रौढ़ विद्यालय भी चलाये जाने चाहिए।

(6) शिक्षा-तंत्र में आमूलमूल क्रांति के रूप में योगदान : आज की शिक्षा पर तीखी टिप्पणी करते हुए पूज्यवर ने कहा है कि यह शिक्षा बेरोजगारी का तंत्र खड़ा कर रही है। सामान्य जानकारी पर ही आधारित मूल्यविहीन शिक्षा कैसे ब्रह्मराक्षस पैदा कर रही है? यह हम भी देख सकते हैं। शिक्षा आज उद्योग बन गयी है। जिनके पास पूंजी है, उसके लिए शिक्षा सुलभ है। 'डोनेशन' पर आधारित शिक्षा-प्रणाली कैसे चिकित्सक, अभियन्ता एवं प्रशासनिक अधिकारी तैयार कर रही है? हम सभी जानते हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने 'शिक्षा ही नहीं विद्या भी' इस विषय पर न केवल लिखा, बल्कि चिन्तन कर ऐसी अनेक स्थापनायें उनकी प्रेरणा से हुईं। 'देवसंस्कृति विश्वविद्यालय' उनके 1964 में देखे गये दिव्य स्वप्न एवं 1980 में 'गायत्री विद्यापीठ' की स्थापना पर उनके द्वारा प्रकट किये गये विचारों की मूर्तिमान स्थापना है। यहाँ से उसी अमरत्व का पाठ सिखाने वाले, बंधनों में न बँधकर जीवन-रीति की कला, स्वयं जीने और औरों को भी जीने का मार्गदर्शन देने वाले छात्र-छात्राएँ तैयार हो रहे हैं। पुनः पुरातन गुरुकुलों- आरण्यकों का तन्त्र खड़ा होगा। सभी स्वावलम्बी व राष्ट्रवादी नागरिक बनेंगे, यह पूज्यवर का विश्वास था, हमारा भी है।

(1) सर्वांग धर्म : मानव-जाति के विकास में प्रत्येक धर्म ने सहायता की है। धर्म एक मौलिक आवश्यकता की पूर्ति करता है और अपरिहार्य है, परन्तु उसके वर्तमान स्वरूप में सुधार की आवश्यकता है। वर्तमान अवस्था में धर्म प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, कुरीतियों का ढेर बनकर रह गया है। इसे इस जाल-जंजाल से उबारना समय की आवश्यकता है। जितना ही अधिक आध्यात्मिक कोई धर्म होगा, वह उतना ही उत्तम होगा, क्योंकि आध्यात्मिकता ही उसका लक्ष्य है। रहस्यवाद सभी धर्म का सार है, परन्तु उसको सार्वभौम और स्पष्ट बनाने की आवश्यकता है। आचार्य जी अपने चिन्तन में ईश्वर और आत्मा का स्पष्ट बोध कराया है। साथ ही उसके साक्षात्कार के लिए अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर बल दिया है, लेकिन धर्म उनके लिए सिर्फ भगवत्साक्षात्कार का उपाय भर नहीं है। इसके अन्तर्गत उन्होंने उन नीतियों, आचार-प्रणालियों का भी स्पष्टीकरण किया है जो सामाजिक विकास व उत्कर्ष के साथ सार्वभौम मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करें। अपने इसी रूप में सर्वांग धर्म भविष्य के विश्वधर्म का स्वरूप ग्रहण करता है। इसमें सभी धर्मों के सार तत्त्व का



समावेश है।

(2) भावी समाज—व्यवस्था का सूत्र अध्यात्मिक समाजवाद : आचार्य जी के विचार—विस्तार ने केवल प्रकृति, ईश्वर एवं व्यक्तित्व की आंतरिक परतों को ही नहीं छुआ, बल्कि उसकी सर्वांगीणता में व्यक्ति की वाह्य चेतना एवं समाज की सार्वभौमिकता भी समाहित हुए हैं। पूर्व प्रचलित समाज— व्यवस्थाओं में व्यक्ति और समाज इनमें से किसी एक का ही वर्चस्व रहने से व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध कभी मधुर नहीं हो सके। आचार्य जी व्यक्ति के उत्कर्ष एवं समाज के विकास दोनों को आवश्यक मानते हैं। इन दोनों के समन्वित विकास के लिए उन्होंने आध्यात्मिक समाजवाद का सिद्धान्त दिया है। अपने सार रूप में यह इस सत्य का उद्घाटन है कि व्यक्तिगत उत्कर्ष सार्वभौम उत्कर्ष के साथ है। सामाजिक आत्मा की अवहेलना करने से वैयक्तिक उत्कर्ष का दृष्टिकोण एकांगी हो जाता है। इस तरह वह महात्मा बुद्ध के सार्वभौमिक मोक्ष के आदर्श को पुनः जाग्रत करते हैं। उनके द्वारा प्रेरित व प्रवर्तित लोक—सेवा का आधार परोपकार नहीं, बल्कि उसमें अन्तस्थ सद्वस्तु का साक्षात्कार है।

(3) मनुष्य में देवत्व और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का सन्देश : आचार्य जी के अनुसार देवमानव का विकास ही धरती को देवभूमि स्वर्ग में बदलेगा। यह सब मानवीय विकास का क्रमिक सोपान होने के साथ ही दैवी योजना के अनुरूप होने के कारण एक अवश्यम्भावी नियति है। इसका मूर्त रूप ही मानव की वर्तमान समस्याओं का स्थाई हल होगा। यों तो मनुष्य ने अपनी समस्याओं के समाधान के लिए अनेकों बौद्धिक युक्तियाँ खोजी हैं, पर हर युक्ति ने अनेकों नई समस्याओं को जन्म दिया। आचार्य जी का कहना है कि समाधान बौद्धिक हल नहीं, मानव का चेतनात्मक विकास है, जिसे वह देवमानव की संज्ञा देते हैं। आचार्य जी का यह समाधान सैद्धान्तिक रूप से अन्य सभी समाधानों से कहीं अधिक उपयुक्त एवं समीचीन है। इसके सैद्धान्तिक स्वरूप को उनके द्वारा किये गये व्यावहारिक प्रयास यथार्थ पूर्णता देते हैं। इन सभी को देखते हुए यह मानना पूर्ण रूप से युक्ति युक्त है कि उनके प्रयास धरती पर नवयुग लाकर रहेंगे।

आचार्य जी उत्कृष्ट चिन्तन की बात करते हैं। वे बताते हैं कि अच्छे विचारों के द्वारा मानव—समाज में अपनी अलग पहचान बना लेता है और इसी के द्वारा व्यक्ति का वैयक्तिक और सामाजिक विकास सम्भव होता है। इसमें वो ईश्वर आराधना और ईश्वर परायणता की बात करते हैं। ईश्वर पर विश्वास करना जीवन—विकास के लिए फायदेमन्द बताते हैं। इस ईश्वर—आराधना के द्वारा ब्रह्मचर्य—पालन का सन्देश देते हैं।

(4) नवयुग का नवीन दर्शन : आचार्य जी सिर्फ नवयुग का सन्देश देकर ही मौन नहीं हो जाते। वह भविष्य के मानव के लिए आचार—विचार की पद्धति, भावी जीवन की रीति—नीति की व्यापक रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। साथ ही वे उपाय भी प्रस्तुत करते हैं, जिनको अपनाकर आज का मानव स्वयं को देवमानव में बदल सके तथा धरती को स्वर्ग बना सके। अपने युग की सभी माँगों को पूरा करने के कारण इसे युग—दर्शन भी कहा जा सकता है। अपने सर्वांग स्वरूप में इसमें प्राचीन और नवीन, पूर्व और पश्चिम, यथार्थवाद और आदर्शवाद, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का अपूर्व समन्वय है। जहाँ गतिहीन, मायावादी और आदर्शवादी सिद्धान्त जीवन को पलायन व निराशा के गर्त में धकेलते हैं एवं सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था को विशृंखल—लित करते हैं, वहीं भौतिकवाद, वैज्ञानिक जड़वाद मनुष्य से उसके चेतनात्मक विकास के सारे अधिकार ही छीन लेता है, ऐसे में मनुष्य के जीवन की सभी प्रणालियों को अपनी सर्वांगीणता में पूर्णता से व्यवस्थित करने वाला दर्शन ही मानवता की यथार्थ सेवा कर सकता है। आचार्य जी ने यही सर्वांगीण प्रयास किया। उनका यह प्रयास वर्तमान का विवेचन और भविष्य की दृष्टि देता है।

सार—संक्षेप : सदज्ञान प्रकाश के देवता 'सविता' के रथ में कभी ऋषि, मनीषी, तपस्वी, साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ और परिव्राजक रूपी सात अश्व मिल—जुलकर दौड़ते थे और उस ऊर्जा और आभा से विश्व का कोना—कोना आलोक से भरते थे। उस शैक्षिक—सांस्कृतिक रथ के निर्माण में समर्थ—सम्पन्न अपनी श्रद्धांजलियाँ नियोजित करते रहते थे। धरती पर स्वर्ग के अवतरण का अवसर इसी आधार पर तथाकथित संतजन, लोगों की मनोकामनायें पूर्ण करने के लिए देवताओं के एजेण्ट बन गये हैं। पैसा खर्चने वाले, आत्म विडम्बना के अतिरिक्त और किसी काम के लिए कौड़ी भी खर्चना नहीं चाहते। ऐसी दशा में विकृतियाँ ही बढ़ती हैं। विकृतियाँ मात्र विपत्ति ही नहीं लातीं, वे उनके समाधान के उपायों को भी झुटलाती हैं और उधर ध्यान देने वालों को भी बरगलाती हैं। इस प्रकार समस्या दूनी, दुहरी जटिल हो जाती है।

आचार्य जी के जीवन का पल—पल आध्यात्म विद्या और शैक्षिक—सांस्कृतिक प्रयोगों में व्यतीत हुआ। अपने प्रयोगों में अध्यात्म, समाज, शिक्षा और संस्कृति तथा जीवन के प्रत्येक पक्ष को समग्रता दी। उन्होंने बताया कि वैयक्तिक चेतना के उत्कर्ष की सार्थकता वैश्विक चेतना के उत्कर्ष में है। इसी समग्रता के लिए उन्होंने ब्रह्मवर्चस् शोध—संस्थान की स्थापना की तथा शैक्षिक—सांस्कृतिक प्रयोग और विकास हेतु देवसंस्कृति विश्वविद्यालय की कल्पना की, जो साकार रूप में देव मानव रूपी टकसाल गढ़ रहा है।



आचार्य जी बताते हैं कि ईश्वर की प्रतिच्छाया विभिन्न रूपों में समष्टिगत चेतन सत्ता में समाई हुई है। उसके "अस्तित्व का प्रमाण ढूँढने के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। विवेक-दृष्टि के अवलम्बन से उसे चाहें, जहाँ चाहे उस रूप में देख सकते हैं एवं उसकी चमत्कारी परिणतियों से अपनी अस्तिकता को पोषण दे सकते हैं।"

इतने बड़े संसार का नियामक परमात्मा सचमुच बड़ा शक्तिशाली है। सत्तावान न होता तो कौन उसकी बात सुनता। दण्ड देने में उसने चूक की होती तो अनियमितता; अस्त-व्यस्तता और हो रही होती। उसकी दृष्टि से कोई भी छुपकर पाप और अत्याचार नहीं कर सकता। बड़ा कठोर है वह, दुष्ट को कभी क्षमा नहीं करता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सम्पादक- ब्रह्मर्चस् : भारतीयसंस्कृति के आधारभूत तत्त्व, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
2. सम्पादक- ब्रह्मर्चस् : शिक्षा एवं विद्या, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
3. डॉ० द्विवेदी, लालता प्रसाद : पं० श्रीराम शर्मा की शैक्षिक अवधारणा तथा तत्सम्बन्धी प्रयोग; शील निकेतन शाला समूह, ईदगाह हिल्स, भोपाल-23।
4. डॉ० मुखर्जी, रवीन्द्रनाथ : भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
5. डॉ० मुखर्जी, रवीन्द्रनाथ : भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
6. अखण्ड ज्योति, मासिक पत्रिका, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-3।
7. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य : आस्तिकतावाद : तथ्य एवं सत्य; यु० नि० यो०, मथुरा।
